दिनांक :- 04-05-2020

कॉलेज का नाम :- मारवाड़ी कॉलेज दरभंगा

लेखक का नाम :- डॉ० फ़ारूक आज़म (अतिथी शिक्षक)

स्नातक :- प्रथम खंड (कला)

विषय :- प्रतिष्ठा इतिहास

इकाई :- छः

पत्र एक

अध्याय उत्तरवैदिक धर्म

उत्तरवैदिक काल के प्रारंभ में धर्म का मूल उद्देश्य ऋग्वैदिक काल की ही भाँति भौतिक सुखों की प्राप्ति ही रहा। इस काल में ऋग्वैदिक देवता इन्द्र तथा वरुण की महत्ता धर्म कम हो गई। उनकी जगह पर नये देवताओं, यथा, शिव या रुद्र, विष्णु या नारायण, प्रजापति या ब्रह्मा ने ले लिया। इस समय प्रजापति मुख्य देवता के रूप में स्थापित हो गये। प्रजापति को विश्व को सृष्टिकर्ता के रूप में देखा गया। प्रजापति को हिरण्य

गर्भ में कहा जाता था। इस तरह गुप्तकाल में जो ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की परिकल्पना स्थापित हुई उसका बीज यहाँ तैयार हो गया।

पूषण अब शूद्रों के देवता के रूप में स्थापित हो गये। अश्विन को कृषि की रक्षा करने वाला देवता माना गया तथा उसी तरह सविता नए मकान बनाने वाले देवता के रूप में जाने गये।

अथर्ववेद में लोक धर्म की भी चर्चा मिलती है, जब इंद्र को नागों एवं राक्षसों का वध करने वाला कहा गया है।

इस समय देवताओं की संख्या में भी वृद्धि हुई। उनमें से अनेक दिग्पाल, गंधर्व यक्ष आदि के रूप में सामने आये। इन को मुख्य देवताओं के सहायक के रूप में रखा गया।

पितृसत्तात्मक तत्वों के सबल होने से उषा एवं अदिति जैसी देवियों का महत्व कम हो गया। उनकी जगह अब विभिन्न यक्षिणियों एवं अप्सराओं का आविर्भाव हुआ।

Scanned with CamScanner

उपासना की विधि :-

उत्तर वैदिक काल में प्रार्थना के स्थान पर यज्ञ महत्वपूर्ण हो गया। यज्ञ में बहुत बड़ी संख्या में पशुओं की बलि दी जाती थी। अब यज्ञ के स्थान पर कर्मकांड की पद्धति विकसित हो गई। अब शब्दों की जादुई शक्ति पर विश्वास किया जाने लगा।

श्रौत यज्ञ दो श्रेणी में विभाजित थे (1) हविर्यज्ञ (2) सोमयज्ञ

(1) हविर्यज्ञ - अग्निहोत्र, दर्श पूर्णमास, चतुर्मास्य, आग्रहायण पशुबलि, सौत्रामणी तथा पिंडी, पितृयज्ञ आता है।

(2) सोमयज्ञ - इसमें अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी वाजपेय, अतिरात्र तथा आप्तोयोम जैसे यज्ञ शामिल थे।

उत्तर वैदिक काल में शब्दों की जादुई शक्ति पर विश्वास किया जाने लगा तथा माने जाने लगा कि मंत्रोच्चारण में किसी प्रकार की अशुद्धि होने से अनिष्ट हो सकता है।

Scanned with CamScanner

चूँकि सही मंत्रोच्चरण ब्राह्मण ही जानते थे। अतः ब्राह्मण महत्वपूर्ण हो गए।

इतना ही नहीं यह भी माना गया कि पृथ्वी का निर्माण भी यज्ञ की प्रक्रिया से ही हुआ है और स्वंय प्रजापति भी इसी यज्ञ के अधीन है। चूँकि यज्ञ की विधि केवल ब्राह्मणों को ही ज्ञात थी। अतः कुछ मायने में उसे देवता से भी अधिक शक्तिशाली बताया गया है।

यज्ञ की दक्षिणा में गायों, दासियों के अलावा सोने, कपड़े तथा घोड़े आदि भी दिये जाते थे। राजसूय यज्ञ करानेवाले पुरोहित को दक्षिणा स्वरूप 240,000 गायों को दिया जाता था। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि अश्वमेध यज्ञ में पुरोहित को उत्तर, दक्षिण, पूरब तथा पश्चिम चारों दिशाएँ देनी चाहिए।

उत्तर वैदिक काल में उत्तरार्द्ध में कृषक संस्कृति का तीव्र विकास हो रहा था। अतः बहुत बड़ी संख्या में

में पशुओं की आवश्यकता थी। आर्यों का प्रभुत्व गंगा-यमुना दोआब में स्थापित हो चुका था। स्वाभाविक रूप से वैदिक यज्ञों के विरुद्ध प्रतिक्रिया प्रारंभ हो गई। इस दृष्टि से प्रथम धर्म सुधारक ऋषि दीर्घतमस को माना जाता है उन्होंने यज्ञ का विरोध किया।

आरण्यकों में ब्राह्मणों की परंपरा से हटकर तप (तपस्या) पर बल दिया गया है।

वैदिक धर्म की आशावादिता अब लुप्त हो गई थी, पुनर्जन्म की अवधारणा पहली बार बृहदारण्यक उपनिषद में आई है।

उपनिषद में मोक्ष की परिकल्पना रखी गई तथा इसके लिये ज्ञान पर बल दिया गया तथा यह माना गया कि ज्ञान हासिल करने के उपरांत आत्मा तथा परमात्मा का एकीकरण संभव था।

Scanned with CamScanner

आश्रम व्यवस्था :-

उत्तर वैदिक काल में केवल तीन आश्रम ही प्रचलित थे। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ। बुद्ध काल / सूत्र काल में आकर चतुर्थ आश्रम स्थापित हो गया।

ऐतरेय ब्राह्मण, तैतिरीय संहिता, शतपथ ब्राह्मण से आश्रम व्यवस्था संबंधी जानकारी मिलती है। सर्वप्रथम जाबालो पनिषद में चारो आश्रमो का उल्लेख मिलता है। आश्रम व्यवस्था आर्यो की विकसित सोच को प्रकट करती है। इसके द्वारा व्यक्तिगत उद्यम एवं निवृति मार्गो के मध्य संतुलन था।

आश्रम व्यवस्था के निम्नांकित उद्देश्य थे।

(i) देव ऋण, ऋषि ऋण तथा पितृ ऋण एवं मानव जाति के ऋण से मुक्त होना।

(ii) जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष की प्रति

आश्रम ~~अव्यवस्था~~ में आर्यो के जीवन को 100 वर्षो का माना गया जिसे प्रत्येक आश्रम में समान रूप से बाँटा गया है।

चारो आश्रम व्यवस्था मे सन्यास आश्रम की उत्पत्ति सब से बाद की लगती है तथा इस पर श्रमण (अवैदिक) विचारधारा का प्रभाव भी दिखता है।

ब्रह्मचर्य आश्रम :-

इस आश्रम का प्रारंभ उपनयन संस्कार से होता था। इसके पश्चात बालक विद्याध्ययन के लिये गुरुकुल चला जाता था। अश्वलायन के अनुसार उपनयन संस्कार की उम्र ब्राह्मण के लिये 8 वर्ष क्षत्रिय के लिये 11 वर्ष तथा वैश्य के लिये 12 वर्ष होती थी। शुद्रो के उपनयन संस्कार नही होते थे।

ब्रह्मचर्य आश्रम मे मानव का पुरुषार्थ केवल ज्ञान होता था। प्रत्येक वर्ण के ब्रह्मचारी के लिये अलग अलग मेखला (कमर मे पहनने) वाला निर्धारित थी। ब्राह्मण ब्रह्मचारी ब्रह्म मूंज की, क्षत्रिय लौह खंड से युक्त मूंज की तथा वैश्य ऊन की मेखला धारण करता था।

Scanned with CamScanner